नीति संक्षिप्त

राज्य की पूर्णाधिकार शक्तियाँ और भारत का “शरणार्थी कानून”

रचयिता: **सहाना बसवापटन**
अनुवादक: **डॉ. मोहम्मद नियाज़ अहमद**

महानिर्वाण कलकत्ता रिसर्च ग्रुप
जनवरी 2025

प्रकाशक:

महानिर्वाण कलकत्ता रिसर्च ग्रुप
आईए-48, सेक्टर-III, भूतल
सॉल्ट लेक सिटी
कोलकाता-700097
भारत
वेब: http://www.mcrg.ac.in

मुद्रक:

ग्राफिक इमेज
न्यू मार्केट, न्यू कॉम्प्लेक्स, पश्चिम ब्लॉक
द्वितीय तल, कमरा नंबर 115, कोलकाता-87

यह प्रकाशन 'द फंड फॉर ग्लोबल ह्यूमन राइट्स' के सहयोग से लाया गया है। यह "जस्टिस, सिक्योरिटी, एंड वल्नरेबल पॉपुलेशन ऑफ साउथ एशिया" पर कलकत्ता रिसर्च ग्रुप के अनुसंधान कार्यक्रम का एक हिस्सा है।

इस प्रकाशन अथवा इसके किसी भाग का उपयोग अन्य लोग नि:शुल्क कर सकते हैं, बशर्ते वे मूल स्रोत का उपयुक्त संदर्भ प्रदान करें।

राज्य की पूर्ण शक्तियाँ और भारत का "शरणार्थी कानून"

परिचय

संप्रभु राज्यों की शक्तियों के प्रयोग में ऐसी शक्तियाँ अंतर्निहित होती हैं जिन्हें "पूर्णाधिकार (प्लेनरी) शक्तियाँ" कहा जाता है। ये वे शक्तियाँ हैं जिनके संबंध में न्यायिक समीक्षा को न्यूनतम स्तर तक सीमित रखा जाता है और अपवादात्मक परिस्थितियों को स्वीकार करते हुए इन्हें व्यापक रूप में मान्यता दी जाती है। पूर्णाधिकार शक्तियों के प्रयोग का एक प्रमुख क्षेत्र विदेशियों एवं बाहरी से संबंधित विषय है, जिस पर किसी संप्रभु राज्य को असाधारण विधायी तथा कार्यकारी अधिकार प्राप्त माने जाते हैं।

भारत में, क्योंकि "शरणार्थी" किसी कानूनी श्रेणी में नहीं आते, सभी शरणार्थी और शरण मांगने वाले पहले विदेशी हैं और इसलिए वे विदेशी अधिनियम, 1946, विदेशी आदेश, 1948 और विदेशियों के पंजीकरण अधिनियम, 1939 द्वारा विनियमित और नियंत्रित होते हैं।

फिर भी, न्यायपालिका की सहायता से, शरण का *दावा* संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त है, जिसमें UNHCR से संपर्क करने का अधिकार, शरणार्थी के रूप में मान्यता प्राप्त करने का अधिकार और निर्वासित न किए जाने का अधिकार शामिल है।

लेकिन जबकि अदालतें अब - दशकों से शरण मांगने वालों और विदेशियों द्वारा किए गए दावों के फलस्वरूप - उत्पीड़न और उत्पीड़न के खतरों से बचाने और इस प्रकार शरणार्थी कानून विकसित करने की स्थिति में हैं, फिर भी "राष्ट्रीय सुरक्षा" के विचार अनसुलझे ही रहते हैं। **राष्ट्रीय सुरक्षा के आधार पर, न्यायालय अक्सर भारत में रहने के दावे को खारिज करके राज्य/केंद्र सरकार का पक्ष लेते हैं।**

यह नीति संक्षिप्त, कानूनी मामलों के विश्लेषण (case law analysis) के माध्यम से, विदेशियों से संबंधित मामलों में भारतीय राज्य की असीमित शक्तियों के घोषित औचित्य, दायरे और सीमा का पता लगाने का प्रयास करती है।

- ➔ भारतीय कानूनी परंपरा में राज्य की विशेषाधिकार या पूर्ण शक्तियों की रूपरेखा क्या हैं?
- ➔ पूर्णाधिकार शक्तियों की उत्पत्ति को हम कहाँ से खोजते हैं? "विदेशियों" की किस श्रेणी पर और किस प्रकार से पूर्णाधिकार शक्ति का प्रभाव पड़ा है? तथा वे शक्तियाँ या नियमों का वह समूह, जो किसी विदेशी के भाग्य का निर्णय करने की राज्य की क्षमता को निर्धारित करता है, किस प्रकार से लागू हुए हैं?
- ➔ यह संक्षिप्त कुछ मामलों (cases)[1] की चर्चा के माध्यम से यह दर्शाने का उद्देश्य रखता है कि कानून में प्रवासियों और विदेशियों के साथ किए जाने वाले व्यवहार के पीछे बहुत कम तर्कसंगत आधार दिखाई देता है; कानून का अनुप्रयोग समान नहीं है।

विदेशियों को नियंत्रित करने वाली संवैधानिक प्रणाली

- ★ संविधान के **अनुच्छेद 245 और 246,** साथ ही सातवीं अनुसूची की सूची I की **प्रविष्टियाँ 17 से 19 और 97,** केंद्र सरकार/अर्थात विधायिका को उन मामलों से संबंधित कानून बनाने की शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करते हैं जो व्यापक रूप से विदेशी, अप्रवासी और आव्रजन विषयों के अंतर्गत आते हैं।

★ **अनुच्छेद 245 और 246** संसद तथा राज्य विधानमंडलों की **विधायी शक्तियों के वितरण से संबंधित हैं।** इन दोनों अनुच्छेदों को साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि वे संसद को संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची-I (संघ सूची) में उल्लिखित विषयों के संबंध में कानून बनाने की शक्ति प्रदान करते हैं। **इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 73(1)(क) और (ख) के अंतर्गत संघ की कार्यपालिका की शक्ति "उन सभी विषयों तक विस्तृत है जिनके संबंध में संसद को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है", तथा उन "अधिकारों, प्राधिकार और क्षेत्राधिकार के प्रयोग तक भी, जिनका प्रयोग भारत सरकार किसी संधि या समझौते के तहत करने के लिए अधिकृत है"।**

★ कार्यकारी शक्ति संघ की विधायी क्षमता के सह-विस्तारित है। **भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने, *राम जावाया बनाम पंजाब राज्य*[2] के मामले में अनुच्छेद 73 और 162[3] की व्याख्या की और माना कि ये प्रावधान "कार्यकारी (कार्यपालिका के) कार्य" को परिभाषित नहीं करते हैं और न ही यह परिभाषित करते हैं कि कौन सी गतिविधियाँ वैध रूप से इसके दायरे में आएंगी। अनुच्छेद 73 का अर्थ है कि केंद्रीय सरकार की शक्ति उन मामलों तक विस्तारित होती है जिन पर संसद विधान करने के लिए सक्षम है।** वे उन मामलों तक सीमित नहीं हैं जिन पर पहले से ही विधान पारित किया गया है। भारतीय संविधान शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का कड़ाई से पालन नहीं करता है; यह अधीनस्थ विधान की शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जब ऐसी शक्तियाँ विधायिका द्वारा इसे प्रत्यायोजित की जाती हैं। यह सीमित तरीके से न्यायिक कार्यों का भी प्रयोग कर सकता है लेकिन संविधान या किसी अन्य कानून के प्रावधान के विरुद्ध नहीं जा सकता है।[4]

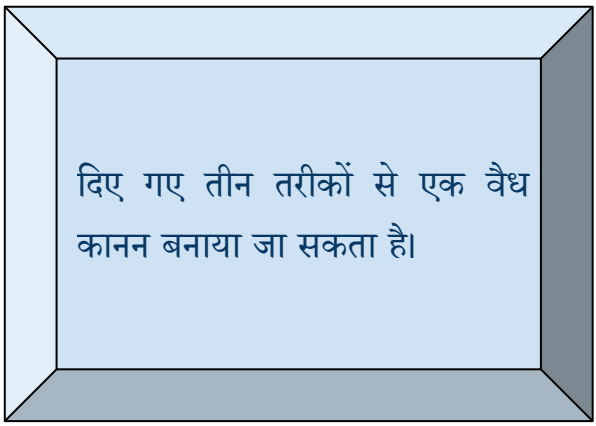

1. **संसद द्वारा पारित बिल के रूप में।**
2. **किसी विद्यमान और वैध अधिनियम के अंतर्गत प्रत्यायोजित/अधीनस्थ विधि के रूप में।**
3. **अनुच्छेद 73 के तहत कार्यकारी कार्यों के माध्यम से।**

- इसी संवैधानिक ढाँचे के अंतर्गत संसदीय विधायन, प्रत्यायोजित विधायन तथा न्यायालयों द्वारा निर्मित विधि का एक अनिश्चित[5] समूह मिलकर "शरणार्थी कानून" का गठन करते हैं।
- **श**रणार्थी निर्धारण स्थिति, गैर-प्रत्यावर्तन का सिद्धांत और शिक्षा के लिए बुनियादी अधिकारों तक पहुंच, समानता और जीवन के अधिकार, क्रमशः अनुच्छेद 14 और 21 के अभिन्न अंग माने गए हैं।

संविधान के भाग III और IV के अन्य प्रावधान सीधे शरणार्थियों की रक्षा करते हैं, जिसमें धर्म का अधिकार (अनुच्छेद 25), गिरफ्तारी, हिरासत और आपराधिक अभियोजन के संबंध में अधिकार (अनुच्छेद 20 और 22) और कानूनी और संवैधानिक उपचार का अधिकार (अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 39-A) शामिल हैं।

फिर भी, ये "कानून" निरंतर परिवर्तनशील रहते हैं और इनमें बार-बार बदलाव होते रहते हैं, जिससे इनके अनुप्रयोग को लेकर कोई निश्चितता नहीं रहती। भारत में विधिक परिदृश्य का यह सतत रूपांतरण प्रत्यक्ष रूप से अनुभव के आधार पर राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी चिंताओं से जुड़ा हुआ है। कुछ मामलों में ये चिंताएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं, जबकि अन्य मामलों में वे अटकलों का विषय बनी रहती हैं। जो चिंताएँ स्पष्ट मानी जाती हैं और प्रचलित धारणा का हिस्सा बन चुकी हैं, उनमें दक्षिण एशियाई महाद्वीप के देशों के बीच संबंध, सीमापार से आतंकवाद का प्रवेश तथा प्रवासियों की धार्मिक पहचान शामिल हैं।

तो फिर पूर्णाधिकार,निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में किस प्रकार व्याप्त हो जाते हैं?

क्या, और यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में, न्यायालय प्रवासियों द्वारा प्रस्तुत दावों और माँगी गई राहतों के निर्णय में, मानो, स्वयं को पीछे हटा लेते हैं? क्या हम ऐसे किसी प्रतिरूप को देख सकते हैं, जिसमें न केवल न्यायालय द्वारा पूर्णाधिकारों को बनाए रखा गया हो, बल्कि उनके समक्ष आए मामलों में केंद्र सरकार द्वारा भी उनका पूर्ण प्रभाव के साथ प्रयोग किया गया हो?

निम्नलिखित विवरण भारत में उच्च न्यायालयों तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विभिन्न प्रकार के याचिकाकर्ताओं से संबंधित मामलों में दिए गए निर्णयों का है।

पूर्ण शक्तियाँ

पूर्ण शक्तियों की उत्पत्ति, सामग्री और अनुप्रयोग पर एक समृद्ध कार्य अमेरिकी कानूनी संदर्भ में मौजूद है।[6] जो अब कानूनी सिद्धांत माना जाता है जो नियमित रूप से आप्रवासन और "भारतीय कानून" पर लागू होता है, पूर्ण शक्तियाँ सिद्धांत कहा जाता है कि *चाए चान पिंग बनाम संयुक्त राज्य*[7] के मामले में उत्पन्न हुआ है जिसमें संयुक्त राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने स्थापित किया कि राष्ट्रीय सुरक्षा निर्णय विधायी और कार्यकारी शाखाओं द्वारा किए जाने चाहिए, न कि न्यायपालिका द्वारा।[8]

भारत में विदेशियों के मामलों में पूर्ण शक्तियों के सिद्धांत का आह्वान

इस खंड में चर्चित मामलों[9] का भारतीय संदर्भ में बहुत अधिक महत्व है।

- विदेशियों को शरणार्थियों के रूप में उपलब्ध अधिकारों को लागू करने के लिए कोई वैधानिक तंत्र उपलब्ध नहीं है, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के ये निर्णय, विदेशी अधिनियम, 1946 एवं अन्य के तहत हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के ये फैसले, *कानून* में दावों के लिए एक तरह से रीढ़ की हड्डी रहे हैं और बने हुए हैं, और ये सिर्फ मानवीय या बराबरी के आधार पर ही नहीं हैं।
- यह संक्षिप्त पाठक से अनुरोध करता है कि अदालत क्या करती है जब वह संविधान के भाग III के तहत विदेशियों और शरणार्थियों के रूप में विदेशियों द्वारा किए गए प्रश्नों और माँगे गए राहतों का सामना करती है।
- **यह सुझाव दिया जा रहा है कि इन मामलों में न्यायाधीशों द्वारा आह्वान की गई राज्य की "पूर्ण शक्तियाँ" मान ली जाती हैं बजाए समझाए जाने के।**

पाठक से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह उस तरीके पर ध्यान दे, जिसमें न्यायालय राज्य के दावों और कथनों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करता है—चाहे वह स्थिति याचिकाकर्ताओं

के शरणार्थी के रूप में अधिकारों को स्वीकार करने की हो या राष्ट्रीय सुरक्षा सहित अन्य आधारों पर उनके दावों को अस्वीकार करने की। यह तर्क दिया गया है कि न्यायालयों द्वारा प्रदर्शित यह सम्मान लगभग पूर्ण[10] है—जिसके कारण वे ऐसे प्रश्न उठाने से भी बचते हैं जो अन्यथा स्पष्ट प्रतीत होते। विदेशियों से संबंधित मामलों में पूर्णाधिकारों के अध्ययन से विधि में अब स्थापित उस स्थिति की समीक्षा संभव होती है कि सभी व्यक्तियों को संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के अंतर्गत मौलिक अधिकार प्राप्त हैं।

★ एक ओर (कभी-कभी अस्पष्ट और कारणरहित) पूर्णाधिकारों के आधार पर निर्णय करना और दूसरी ओर यह तर्क देना कि कुछ मौलिक अधिकार गैर-नागरिकों को भी उपलब्ध हैं, इसका अर्थ आखिर क्या है?

★यदि संविधान के उत्तरवर्ती प्रावधान ही वह सीमा हैं, जिन्हें लाँघे बिना किसी निर्णय को मनमाना और असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता, तो क्या (कार्यपालिका तथा न्यायपालिका दोनों के) निर्णय वास्तव में परस्पर (तर्क एवं न्याय) संगत हैं?

राज्य की पूर्ण शक्ति को मान्यता देने वाले सर्वोच्च न्यायालय के शुरुआती निर्णयों में से एक हंस मुलर ऑफ न्यूरेमबर्ग बनाम अधीक्षक, प्रेसिडेंसी जेल, कलकत्ता और अन्य[11] का मामला था।

- इस मामले में याचिकाकर्ता, जो एक पश्चिम जर्मन नागरिक था, को सितंबर 1954 में कलकत्ता पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया और उसे रोकथाम हिरासत अधिनियम, 1950 की धारा 3(1) के अंतर्गत इस आधार हिरासत में रखा गया कि वह विदेशी अधिनियम, 1946 के संबंध में एक विदेशी है, तथा उद्देश्य उसे भारत से निष्कासित करना था।
- सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिका याचिकाकर्ता हैंस मुलर द्वारा की गई मुकदमेबाज़ी का दूसरा चरण थी, क्योंकि वह कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा

उसकी याचिका खारिज किए जाने से आहत था। उच्च न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता ने हैबियस कॉर्पस याचिका इस आधार पर दायर की थी कि उसे अवैध रूप से निरुद्ध रखा गया है और उसके निष्कासन के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया गया था।

- जर्मनी के संघीय गणराज्य ने बंगाल सरकार को पत्र लिखकर सूचित किया था कि याचिकाकर्ता जर्मनी में किए गए अपराधों के संबंध में वांछित है और उसके प्रत्यर्पण के लिए आवेदन किया जाएगा। याचिकाकर्ता ने यह तर्क दिया कि उसका निरोध अवैध है, क्योंकि निवारक निरोध अधिनियम, 1950 की धारा 3(1)(b) संविधान के प्रतिकूल है, और इसके लिए उसने तीन आधार प्रस्तुत किए (1) यह अनुच्छेद 14, 21 और 22 का उल्लंघन करती है; (2) निवारक निरोध अधिनियम, 1950 की धारा 3(1)(b), अनुच्छेद 22(3) के अर्थ में निवारक निरोध से संबंधित कोई विधि नहीं है और इसलिए यह अनुच्छेद 22(1) तथा 22(2) का उल्लंघन करती है; तथा (3) निरोध आदेश दुर्भावना में पारित किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज कर दिया।

भारत में विदेशियों के अधिकारों और यह सवाल कि क्या भारत में कोई ऐसा कानून है जो कार्यपालिका को किसी विदेशी को निष्कासित करने का अधिकार देता हो (प्रत्यर्पण के बजाय), के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि—भारत में किसी भी हिस्से में स्वतंत्र रूप से घूमने, रहने और बसने का अधिकार किसी विदेशी को प्राप्त नहीं है।

- उनके लिए केवल यह सुनिश्चित किया गया है कि उन्हें देश के कानूनों के अनुसार जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा प्राप्त होगी।
- दूसरा, सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि विदेशी अधिनियम, 1946 भारत से विदेशी को निष्कासित करने की शक्ति प्रदान करता है और यह शक्ति केंद्र सरकार को पूर्ण और असीमित विवेक (absolute and unfettered discretion) देती

है। चूंकि संविधान में इस विवेक को सीमित करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए निष्कासन का अधिकार असीमित रूप से बना रहता है।[12]

लुई डे राएड्ट और अन्य बनाम भारत संघ[13] के मामले में, याचिकाकर्ताओं[14] ने जुलाई 1987 के केंद्र सरकार के आदेश को चुनौती दी, जिसमें उनकी भारत में रहने की अवधि बढ़ाने की याचिका अस्वीकार कर दी गई थी, इसे मनमाना बताया गया और उन्हें एक निश्चित तारीख तक भारत छोड़ने का आदेश दिया गया था।

अदालत के समक्ष लुई डे राएड्ट के तर्क दोहरे थे। उन्होंने तर्क दिया कि संविधान के अनुच्छेद **5(c)** के हिसाब से वे **26.11.1949** को भारतीय नागरिक बन गए थे और इसलिए उन्हें इस धारणा पर निष्कासित नहीं किया जा सकता कि वे विदेशी हैं। वैकल्पिक रूप से, यह तर्क दिया गया कि किसी बाहरी को निष्कासित करने की शक्ति प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार प्रयोग की जानी चाहिए और विदेशी को निष्कासित किए जाने से पहले सुनवाई का हकदार है।

अदालत ने याचिकाकर्ता के मामले को स्वीकार नहीं किया।

- अनुच्छेद 5(c) के प्रश्न पर, अदालत ने माना कि "...याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं प्रस्तुत तथ्य इस बात के लिए कोई संदेह नहीं छोड़ते कि उसका स्थायी निवासस्थान यहाँ नहीं था।"[15]

न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता का निवास भारत में नहीं था क्योंकि "आवेदन में इस बात का कोई संकेत नहीं था कि उसने इस देश में स्थायी रूप से रहने का इरादा किया था। जिसके लिए रहने की अवधि बढ़ाने की मांग की गई थी, वह केवल एक वर्ष की थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि 1980 तक उसने यहाँ स्थायी रूप से बसने का निर्णय नहीं लिया था।"[16]

इसने आगे माना कि "निवास अकेला, इस मनोदशा के साथ [अर्थात्, प्रमाण कि उसने निवास के देश में अपना स्थायी घर बनाने का इरादा बनाया है और वहां स्थायी रूप से रहने का जारी रखने का], अपर्याप्त है।[17]

- **अनुच्छेद 11 में, न्यायालय ने यह भी कहा** कि याचिकाकर्ताओं ने अपने पासपोर्ट के आधार पर भारत में रहने को प्राथमिकता दी, बिना यह कदम उठाए कि वे स्थायी निवासी बनें। उन्होंने समय-समय पर विशिष्ट अवधि के लिए रहने की अनुमति मांगी और "इन संबंधों में याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई किसी भी आवेदन से यह संकेत तक नहीं मिलता कि उन्होंने यहाँ स्थायी रूप से रहने का कोई इरादा बनाया था।"
- **अनुच्छेद 12 में, यह निष्कर्ष दोहराया गया, न्यायालय ने कहा,** "...उन्होंने भारतीय अधिकारियों की अनुमति के साथ विदेशी पासपोर्ट के आधार पर यहाँ रहने का विकल्प चुना।"

विदेशियों को संविधान के तहत मौलिक अधिकार प्राप्त होने के तर्क का खंडन करते हुए, न्यायालय ने कहा कि किसी विदेशी का मौलिक अधिकार केवल अनुच्छेद 21 तक सीमित है, जो जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा देता है, और इसमें अनुच्छेद 19(1)(e) के तहत भारत में रहने और बसने का अधिकार शामिल नहीं है।

इसमें आधार हंस मुलर ऑफ न्यूरेमबर्ग बनाम अधीक्षक, प्रेसिडेंसी जेल, कलकत्ता[18] के मामले को रखा गया, जिसमें यह निर्णय दिया गया—

भारत सरकार के पास विदेशियों को निष्कासित करने की शक्ति पूर्ण और असीमित है तथा संविधान में इस विवेक को सीमित करने का कोई प्रावधान नहीं है।

जहाँ तक भारत का सवाल है, "...कार्यपालिका सरकार के पास किसी विदेशी को निष्कासित करने का असीमित अधिकार है।"[19] विदेशी को सुनवाई का अधिकार प्राप्त होने के तर्क पर, न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि यह तय करने का कोई सख्त नियम नहीं है कि संबंधित व्यक्ति को अपने मामले को प्रस्तुत करने का अवसर किस प्रकार दिया जाए।[20] (अनुच्छेद 13, पृ. 562)

शरणार्थियों से संबंधित मामलों में न केवल ऊपर उल्लिखित दो निर्णयों का हवाला दिया गया है, बल्कि कुछ मामलों में न्यायालय ने उन सीमित दृष्टिकोणों को भी पार किया है जो इन दो निर्णयों में दिखाई देती हैं।

- चकमा शरणार्थियों का मामला न्यायपालिका के उदार दृष्टिकोण का एक उदाहरण है, जहां राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न सर्वोपरि नहीं हैं।
- चकमा एक आदिवासी जनजाति है जो भारत, बांग्लादेश और म्यांमार में पाई जाती है। वे 1960 के दशक में चटगांव पहाड़ी इलाकों से भागकर भारत में बस गए थे, क्योंकि 1964 में भारत सरकार ने शरणार्थियों को नागरिकता देने की नीति बनाई थी। पिछले कुछ दशकों में, चकमा शरणार्थियों ने, या तो अकेले पिटीशनर के रूप में या सामूहिक रूप से, न्यायालयों का रुख किया है ताकि उन्हें निष्कासन से बचाया जाए और उन्हें नागरिकता प्रदान करने के निर्देश दिए जाएँ।

- *अरुणाचल प्रदेश राज्य बनाम खुदीराम चकमा*[21] के मामले में, गुवाहाटी उच्च न्यायालय के निर्णय की सत्यता पर सवाल उठाया गया। उच्च न्यायालय[22] ने निष्कर्ष निकाला कि राज्य सरकार का आदेश, जिसमें अपीलकर्ताओं (खुदीराम चकमा और 56 अन्य परिवारों) को जॉयपुर छोड़ने के लिए कहा गया, वैध था और अपीलकर्ताओं का उस क्षेत्र में स्थायी निवास माँगने का कोई अधिकार नहीं था।[23]

सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न अवलोकनों और निष्कर्षों को समझने के लिए, संक्षिप्त तथ्यों को नोट किया गया है।

- अपीलकर्ता, खुदीराम चकमा और 56 अन्य परिवार मार्च 1964 में तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान से भारत आए और असम के डिब्रूगढ़ में 'लेगो के सरकारी शिविर' में उन लोगों को शरण दिया गया।
- बाद में, बताया गया कि 1966 में अपीलकर्ता अरुणाचल प्रदेश के मियाओ में एक शिविर में चले गए। उसी वर्ष, अरुणाचल प्रदेश सरकार ने चकमा पुनर्वास योजना बनाई, जिसमें अपीलकर्ताओं के लिए गौतमपुर और मैत्रीपुर में जमीनें आवंटित की गईं।
- इन गांवों में रहने के बजाय, अपीलकर्ताओं ने 1972 में स्थानीय राजा के साथ बातचीत करके और एक ग़ैर-रेजिस्टर्ड दस्तावेज़ के ज़रिए खुद को निजी जमीन पर स्थानांतरित कर लिया। 1973 में, खुदीराम चकमा को कथित तौर पर जॉयपुर गांव का गांव-बुरा नियुक्त किया गया।
- अपीलकर्ताओं द्वारा आरोप लगाया जाता है कि भूमि की समृद्धि के कारण, निकटवर्ती गांवों के ग्रामीणों ने विवाद उठाए, जिसमें यह भी शामिल था कि भूमि को शरणार्थी बस्ती के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता। रिपोर्टें भी प्राप्त हुईं कि चकमाओं द्वारा आपराधिक और अवैध गतिविधियाँ की जा रही हैं।
- उच्च न्यायालय ने इस पृष्ठभूमि में निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ताओं को (जॉयपुर में) स्थायी निवास स्थान मांगने का कोई अधिकार नहीं है और अधिकारियों को उन्हें बाहर स्थानांतरित करने की आवश्यकता/निर्देश देने में सही थे।

- उच्च न्यायालय ने चकमाओं के खिलाफ शिकायतें भी पाईं, जिसमें चोरी, हथियार और गोला-बारूद प्राप्त करना आदि शामिल हैं।
- अंत में, उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि निष्कासन की स्थिति में अपीलकर्ताओं को मुआवजा दिया जाए।
- उच्च न्यायालय के समक्ष, अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया था कि वे नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 6-A के अनुसार भारत के नागरिक हैं और राज्य सरकार का उन्हें स्थानांतरित करने का आदेश अवैध और मनमाना है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हुआ है।

इस पृष्ठभूमि में, सर्वोच्च न्यायालय को उच्च न्यायालय के निर्णय की वास्तविकता पर विचार करने की आवश्यकता थी।

- सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकांश मामलों में उच्च न्यायालय की सहमति व्यक्त की कि: जॉयपुर में अपीलकर्ताओं के निवास के लिए राजा द्वारा दी गई जमीन अवैध थी। अपीलकर्ता नागरिकता अधिनियम, 1955 की धारा 6A के तहत नागरिकता का दावा नहीं कर सकते, क्योंकि धारा 6A में मांगी गई शर्तें पूरी नहीं हुई थीं। उन्हें स्थानांतरित करने का आदेश कई अवसर देने के बाद दिया गया, जिसमें उन्होंने अधिकारियों के समक्ष अपने प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किए थे।[24]
- सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के उस निर्णय से असहमति जताई[25] जिसमें निष्कासन की स्थिति में अपीलकर्ताओं को मुआवजा देने का प्रावधान था, इस आधार पर कि अपीलकर्ताओं का भूमि पर कब्जा पहले स्थान पर बंगाल ईस्टर्न फ्रंटियर रेगुलेशन, 1873 तथा विदेशी आदेश, 1948 की धारा 9(3) के विपरीत था। सामान्य रूप से देखा जाए तो सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय ठोस प्रतीत होता है। हालांकि, अपने अवलोकनों और दोनों पक्षों के तथ्यों और तर्कों पर विचार करने के बाद, यह निर्णय कई चिंताओं को जन्म देता है कि न्यायालय ने इस मामले में किस प्रकार निर्णय लिया।

- **हमें यह याद रखना चाहिए कि चकमा लोग भारत में इसलिए बसे थे क्योंकि उन्हें राज्य द्वारा शरणार्थी घोषित किया गया था, और जो पुनर्वास योजना बनाई गई, वह इस शरणार्थी मान्यता के अनुरूप बनाई गई थी।[26]**
- **अंतर्राष्ट्रीय शरणार्थी कानून[27] के तहत, शरणार्थियों पर भी देश का कानून लागू होता है, बिल्कुल वैसे ही जैसे किसी अन्य नागरिक पर लागू होता है।[28]**
- इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि चकमा परिवारों को राज्य सरकार द्वारा इसलिए स्थानांतरित करने का प्रयास किया गया क्योंकि उन्होंने संरक्षित क्षेत्र पर अवैध कब्जा किया था, हथियार और गोला-बारूद जुटाया, अपराधी गतिविधियों में लिप्त थे, असामाजिक तत्वों के साथ संबंध बनाए और वे "…अन्य जनजातियों के लिए लगातार परेशानी का स्रोत" थे।[29]
- इन अपराध और अवैध गतिविधियों के आरोपों पर कोई विशेष टिप्पणी नहीं की गई, सिवाय इसके कि इन्हें सरकार के निष्कासन आदेश को बनाए रखने का आधार माना गया। अन्य समुदायों के शरणार्थियों की तरह, चकमा शरणार्थियों को इन आरोपों के कारण देश से निष्कासन का सामना नहीं करना पड़ा। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि अपीलकर्ताओं को अधिकारियों के समक्ष अपने प्रतिनिधित्व पेश करने के अवसर दिए गए[30] और इसके बावजूद उन्हें "निर्णय के बाद सुनवाई" भी प्रदान की गई, जो राज्य की ओर से प्रस्तुत तर्कों पर आधारित थी।[31]

> इसकी तुलना लुई डे राएड्ट बनाम भारत संघ[32] के निर्णय से करें, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि संबंधित व्यक्ति को अपना पक्ष रखने का अवसर देने के तरीके के बारे में कोई कठोर एवं निश्चित नियम नहीं हो सकता। अदालतों द्वारा (और केवल संघ/केंद्रीय सरकार द्वारा ही नहीं) किए गए इस भिन्न व्यवहार से यह स्पष्ट होता है कि पूर्ण शक्तियाँ—अर्थात् वे विस्तृत शक्तियाँ जो वैधानिक शक्ति द्वारा

समर्थित नहीं होतीं—(अनजाने में ही सही) विदेशियों से जुड़े निर्णयों में कैसे समाहित प्रवेश कर जाती हैं।

अरुणाचल प्रदेश राज्य बनाम खुदीराम चकमा का मामला इस बात को स्पष्ट करता है, मेरा यह तर्क है कि "राष्ट्रीय सुरक्षा" वास्तविक सुरक्षा चिंताओं की तुलना में इस बात पर अधिक आधारित है कि भारतीय राज्य (सरकार) क्या मानती है।

उपरोक्त चर्चा किए गए मामलों से व्यवहार में भिन्न, फिर भी उनसे बहुत अधिक अलग नहीं, भारत में बर्मी (म्यांमार के) शरणार्थियों के दावे हैं,—

जिनमें रोहिंग्या शामिल नहीं हैं, क्योंकि उन्हें एक अलग श्रेणी (वर्ग) के रूप में माना जाता है।

कैंप में रह रहे शरणार्थियों की तस्वीर,
जिसे सुचरिता सेनगुप्ता द्वारा क्लिक किया गया।

बर्मियों के मामले में स्वीकृत नीति में शरण के लिए यूएनएचसीआर (UNHCR) के पास जाने का अधिकार, शरणार्थी दावों पर संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी द्वारा विचार किए जाने तक निर्वासित न किए जाने का अधिकार और भारत में शरण मांगने का बर्मियों[33] का अधिकार शामिल है। इसके बाद के कुछ निर्णय एकसमान नहीं रहे हैं।

- लाल तलान लॉम बनाम भारत संघ एवं अन्य[34] के मामले में, याचिकाकर्ता की पत्नी ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष एक बंदी प्रत्यक्षीकरण (habeas corpus) याचिका दायर कर अपने पति को अवैध हिरासत से मुक्त कराने की मांग की। मांगी

गई राहत यह थी कि याचिकाकर्ता के पति को निर्वासित न किया जाए क्योंकि वे गृह मंत्रालय द्वारा जारी वैध दीर्घकालिक वीजा (LTV) प्राप्त मान्यता प्राप्त शरणार्थी हैं।

- याचिकाकर्ता के पति की गिरफ्तारी और हिरासत (याचिका के समय) स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम (NDPS Act), 1985 के तहत कार्यवाही के फलस्वरूप हुई थी।
- याचिकाकर्ता के पति ने अपनी सजा पूरी कर ली थी और उसे एफआरआरओ (FRRO) के समक्ष पेश किया गया, जिसने उसे हिरासत केंद्र (Detention Centre) में भेज दिया। गृह मंत्रालय (MHA) ने याचिकाकर्ता के पति को निर्वासित करने का निर्णय लिया।
- उच्च न्यायालय का निर्णय बारीकी से जांचने योग्य है। न्यायालय ने माना कि सरकार द्वारा निर्वासन के दिशा-निर्देशों का पालन नहीं किया गया था, जिसके अनुसार निर्वासन की प्रक्रिया छह महीने के भीतर पूरी की जानी चाहिए, और इसलिए यह माना कि यह संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उसके अधिकारों का उल्लंघन है।
- उच्च न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि गृह मंत्रालय (MHA) की देरी के कारण याचिकाकर्ता के पति की आवाजाही की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है।
- न्यायालय ने बंदी की अस्थायी रिहाई का आदेश देते हुए कहा कि बायोमेट्रिक डेटा का संग्रह, जमानत की आवश्यकताओं का अनुपालन और मासिक आधार पर पुलिस को रिपोर्ट करना पर्याप्त सुरक्षा उपाय हैं, जो उसके निर्वासन तक उसकी रिहाई के लिए पर्याप्त शर्तें हैं।
- लाल तलान लॉम बनाम भारत संघ के मामले की तुलना अरुणाचल प्रदेश राज्य बनाम खुदीराम चकमा में चकमा शरणार्थियों से जुड़े मामले से करें, जहाँ अपीलकर्ताओं के अवैध गतिविधियों में शामिल होने की सूचना दी गई थी। इन मामलों की तुलना राज्य बनाम चंद्र कुमार एवं अन्य[35] के मामले से करें, जो मजिस्ट्रेट कोर्ट का एक निर्णय था, जिसने दोषसिद्धि के बावजूद श्रीलंकाई तमिल शरणार्थी[36]

की रिहाई का आदेश दिया था। मजिस्ट्रेट का निर्णय अंतरराष्ट्रीय शरणार्थी कानून पर आधारित था, जिस पर उन्होंने विस्तार से चर्चा की थी।[37]

निष्कर्ष

- इस संक्षिप्त का उद्देश्य भारतीय संदर्भ में "पूर्णाधिकार" के दायरे, रूपरेखा और सीमाओं का मूल्यांकन करना था, जिसमें विशेष रूप से शरणार्थियों और शरण चाहने वालों को विनियमित करने के तरीके का संदर्भ दिया गया है। भारत में शरणार्थियों की उपस्थिति को विनियमित करने के लिए नियमित रूप से पारित किए जाने वाले कार्यकारी आदेशों के अलावा, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायालयों ने भी "शरणार्थी कानून" के ढांचे को विकसित करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- इस प्रकार, इस पत्र ने जिस मामले (case law) के विश्लेषण पर ध्यान केंद्रित किया है, उसका उद्देश्य यह समझना है कि न्यायालयों ने पूर्णाधिकारों पर किस प्रकार विचार किया है, और क्या और किस सीमा तक उनके द्वारा इन पूर्णाधिकारों की व्यापकता को पहचाना और परिभाषित किया गया है। भारत में न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों में, पूर्णाधिकारों का ढांचा सबसे अच्छी स्थिति में भी अस्पष्ट है, क्योंकि इसमें यह धारणा निहित है कि राज्य के पूर्णाधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए।
- इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए इस बात पर विचार करना होगा कि भारतीय संदर्भ में पूर्णाधिकारों के अर्थ का संवैधानिक कानून आधार क्या रहा है।

लेखिका: सहाना बसवापटन कलकत्ता रिसर्च ग्रुप की सदस्य हैं तथा बैंगलोर में आधारित वकील हैं जो सिविल, आपराधिक तथा वाणिज्यिक मुकदमेबाजी के क्षेत्रों में अभ्यास करती हैं। उन्होंने जबरन प्रवासन पर कार्य किया है तथा नई दिल्ली में रहते हुए शरणार्थियों/शरण मांगने वालों के साथ काम किया है तथा बैंगलोर में अदालतों के समक्ष शरण मांगने वालों का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे **2024** में **CRG** के **"**दक्षिण एशिया की न्याय**,** सुरक्षा तथा कमजोर आबादी**"** अनुसंधान कार्यक्रम से जुड़ी हुई हैं। यह प्रकाशन अनुसंधान का हिस्सा है।

अनुवादक: डॉ. **मोहम्मद नियाज़ अहमद** वर्तमान में स्वामी विवेकानंद विश्वविद्यालय**,** बैरकपुर**,** कोलकाता के मैनेजमेंट विभाग में सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। उनके शोध-लेख सेज**,** रूटलेज और वाइली जैसे प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय प्रकाशनों में प्रकाशित हुए हैं। हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में लेखन एवं प्रकाशन उनकी द्विभाषी दक्षता को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

[1] यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस लेख में चर्चा किए गए मामले इस विषय के लिए संपूर्ण नहीं हैं। एक प्रगतिशील कार्य के रूप में, यह विषय के तर्क को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, भले ही वह आंशिक हो। इस लेख के लिए चुने गए मामले न्यायालयों के भिन्न-भिन्न रुख के प्रतिनिधि हैं। यह आशा की जाती है कि भले ही यह संपूर्ण न हो, लेकिन मामलों का यह प्रतिनिधि नमूना इस तर्क के साथ निरंतर जुड़ाव के लिए पर्याप्त आधार प्रदान करता है।

[2] AIR 1955 SC 549।

[3] राज्य की कार्यकारी शक्ति का विस्तार।

[4] उपरोक्त नोट 93, अनुच्छेद 7, पृ. 554 तथा अनुच्छेद 12, पृ. 556।

[5] इसके अतिरिक्त देखें: राजीव धवन, रिफ्यूजी लॉ एंड पॉलिसी इन इंडिया, PILSARC, 2004—जिसमें शरणार्थी नीति, विधिक ढाँचे और उसके विकास का समग्र विवरण दिया गया है। दो दशक बाद भी भारत की शरणार्थी नीति का यह ऐतिहासिक और विधिक विवरण प्रासंगिक बना हुआ है। अन्य संदर्भों में शामिल हैं: रागिनी त्राकरू जुत्शी (संपा.), रिफ्यूजीज़ एंड द लॉ, HRLN, 2007।

[6] देखें, उदाहरण के लिए, सुसान बिबल्स कॉटिन, जस्टिन रिचलैंड और वेरोनिक फोर्टिस, *Routine Exceptionality: The Plenary Power Doctrine, Immigrants and the Indigenous Under U.S. Law*, 4 UC Irvine Law Review, 97 (2014), यहाँ से प्राप्त: https://escholarship.org/uc/item/0r54h3mn (अंतिम बार 26.10.2024 को देखा गया); सारा एच. क्लीवलैंड, *The Plenary Power Background of Curtiss-Wright*, 70 U. Colo.L. Rev 1127 (1999), यहाँ उपलब्ध है: https://scholarship.law.columbia.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=4521&context=faculty_scholarship (अंतिम बार 26.10.2024 को देखा गया); रॉबर्ट जे. रेनस्टीन, *The Limits of Executive Power*, American University Law Review 59, no. 2 (दिसंबर 2009): 259-337, यहाँ उपलब्ध है: https://digitalcommons.wcl.american.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=1005&context=aulr (अंतिम बार 26.10.2024 को देखा गया); फव्वाज़ मल्की शौकफेह, *Where the Law is Silent: Plenary Power & the "National Security"*, Harvard Political Review, Constitution, यहाँ उपलब्ध है: https://harvardpolitics.com/national-security-constitution/ (अंतिम बार 26.10.2024 को देखा गया); एरिक के. यामामोटो और राहेल ओयामा, *Masquerading Behind a Facade of National Security*, The Yale Law Journal Forum, 30 जनवरी, 2019, यहाँ उपलब्ध है: https://www.yalelawjournal.org/pdf/YamamotoOyama_q51woru1.pdf (अंतिम बार 26.10.2024 को देखा गया); नात्सु टेलर सैतो, *The Enduring Effect of the Chinese Exclusion Cases: The Plenary Power Justification for On-Going Abuses of Human Rights*, 2003, Asian American Law Journal, यहाँ उपलब्ध है: https://doi.org/10.15779/Z384K4H (अंतिम बार 26.10.2024 को देखा गया); अज़ीज़ राणा, *Constitutionalism and the Foundations of the Security State*, 103 California Law Review (2015), यहाँ उपलब्ध है: https://scholarship.law.cornell.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=2549&context=facpub (अंतिम बार 26.10.2024 को देखा गया)।

[7] 130 U.S. 581 (1889), जिसे *चाइनीज़ एक्सक्लूज़न केस* भी कहा जाता है। *Chae Chan Ping बनाम संयुक्त राज्य अमेरिका* मामले में उस कानून को चुनौती दी गई थी, जिसने सभी चीनी श्रमिकों के प्रवेश से इनकार कर दिया था, जबकि 1868 के बर्लिंगेम समझौते के तहत उन्हें अमेरिका में प्रवास की अनुमति थी।

[8] इसके अतिरिक्त देखें: फव्वाज़ मल्की शौकफेह, *वेयर द लॉ इज़ साइलेंट: प्लेनरी पावर एंड "नेशनल सिक्योरिटी"*, Harvard Political Review।

[9] यह लेख भारत में विदेशियों से संबंधित सभी मामलों का संपूर्ण विवरण नहीं देता, बल्कि केवल एक नमूना प्रस्तुत करता है। उद्देश्य उन मामलों पर चर्चा करना है जो पूर्णाधिकार (plenary powers) के सिद्धांत को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबोधित करते हैं। कई विद्वानों और अधिवक्ताओं ने मिसालों के महत्व, शरणार्थी कानून की प्रकृति और उसके विषयों का विश्लेषण किया है। उदाहरणार्थ देखें: रणबीर समद्दार (संपा.), *रिफ्यूजीज़ एंड द स्टेट: प्रैक्टिसेज़ ऑफ़ असाइलम एंड केयर*, 1997–2000, Sage Publications, 2003; तथा शुभ्रो प्रसून सरकार, *रिफ्यूजी लॉ इन इंडिया: द रोड फ्रॉम एम्बिग्यूटी टू प्रोटेक्शन*, Palgrave Macmillan, 2017।

[10] यद्यपि कुछ निचली अदालतों और उच्च न्यायालयों के हालिया आदेश—जैसे *दीपक घार्टी बनाम नूरुल अमीन*, SC No. 25/2022 (बदरपुर GPRS, दीमा हसाओ, असम), आदेश दिनांक 20.03.2023; *स्टेट बनाम मोहम्मद सादिक व अन्य*, SC No. 123/2022 (मेघलीगंज, कूचबिहार), दिनांक 01.03.2023; *स्टेट ऑफ़ वेस्ट बंगाल बनाम सैयद नूर व अन्य*, GR केस नं. 2060/2017, आदेश दिनांक 19.07.2022—अपवाद हैं, परंतु समग्र विधिक ढाँचा ऐसे निर्णयों को मिसाल के रूप में स्थापित करने की अनुमति नहीं देता।

[11] AIR 1955 SC 367.

[12] वही, अनुच्छेद 33 और 34।

[13] (1991) 3 SCC 554।

[14] वही। भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत तीन रिट याचिकाएँ दायर की गई थीं—लुई डी रैड्ट (बेल्जियम), बी.ई. गेटर (अमेरिकी) और एस.जे. गेटर (बी.ई. गेटर की पत्नी, अमेरिकी)। मामले से संकेत मिलता है कि तीनों ईसाई मिशनरी थे और वैध वीज़ा पर भारत में कार्यरत थे। लुई डी रैड्ट 1937 में ब्रिटिश वीज़ा पर भारत आए थे और बिहार के एक आदिवासी क्षेत्र में मिशनरी के रूप में कार्य किया। वे 1937 से भारत में रह रहे थे, सिवाय 1966 और 1973 में बेल्जियम की अल्पकालिक यात्राओं के।

[15] वही, पृ. 558, अनुच्छेद 5।

[16] वही, पृ. 559, अनुच्छेद 6।

[17] वही, पृ. 560, अनुच्छेद 10।

[18] AIR 1955 SC 367।

[19] *Louis De Raedt व अन्य बनाम भारत संघ*, (1991) 3 SCC 554, पृ. 562, अनुच्छेद 13।

[20] वही।

[21] 1994 Supp (1) SCC 615।

[22] सिविल रूल नं. 166/1984।

[23] वही, पृ. 621, अनुच्छेद 26।

[24] वही, पृ. 629–630, अनुच्छेद 68 से 72।

[25] वही, पृ. 631, अनुच्छेद 76 से 79।

[26] उदाहरणार्थ देखें: भारत सरकार के आदेश संख्या 13/2/2010-NE.II दिनांक 10.08.2010 के तहत गठित संयुक्त उच्च स्तरीय समिति की पहली बैठक की कार्यवाही, 9 जनवरी 2012, ईटानगर।

[27] संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी स्थिति सम्मेलन, 1951 का अनुच्छेद 2।

[28] कई निर्णयों में उच्च न्यायालयों ने केंद्र सरकार के इस तर्क को स्वीकार किया है कि कानून का उल्लंघन करने वाले शरणार्थियों को निर्वासित किया जाना चाहिए।

[29] *State of Arunachal Pradesh बनाम Khudiram Chakma,* 1994 Supp (1) SCC 615, पृ. 630, अनुच्छेद 71।

[30] वही, पृ. 629–630, अनुच्छेद 68 से 72।

[31] वही, पृ. 632, अनुच्छेद 80।

[32] (1991) 3 SCC 554, अनुच्छेद 13।

[33] इनमें प्रसिद्ध निर्णय शामिल हैं: Zothansangpuii बनाम स्टेट ऑफ मणिपुर; Bogyi बनाम भारत संघ; U. Myat Kyaw व अन्य बनाम स्टेट ऑफ मणिपुर; डॉ. मालविका कार्लेकर बनाम भारत संघ।

[34] WP (Crl.) No. 1327/2015, आदेश दिनांक 06.08.2015, दिल्ली उच्च न्यायालय।

[35] FIR नं. 78/10, मजिस्ट्रेट न्यायालय, द्वारका, दिल्ली, सज़ा आदेश दिनांक 20.09.2011।

[36] *State बनाम चंद्र कुमार* में अभियुक्त को जाली दस्तावेज़ों के साथ देश छोड़ने का प्रयास करते हुए गिरफ्तार किया गया।

[37] वही। न्यायालय ने यह माना कि अभियुक्त ने यह स्थापित कर दिया है कि यदि उसे निर्वासित किया गया तो उसे उत्पीड़न का ठोस और उचित भय है। *नॉन-रिफाउल्मेंट* का सिद्धांत प्रथागत अंतरराष्ट्रीय विधि का हिस्सा है और यह भारत पर बाध्यकारी है, भले ही भारत ने 1951 के शरणार्थी सम्मेलन पर हस्ताक्षर किए हों या नहीं, क्योंकि भारत उन अन्य अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों का पक्षकार है जिनमें *नॉन-रिफाउल्मेंट* का सिद्धांत निहित है। श्रीलंका की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए, न्यायालय ने यह प्रश्न उठाया कि वह किसी व्यक्ति के उत्पीड़न में भागीदार कैसे बन सकता है। अंततः, न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अभियुक्त को निर्वासित नहीं किया जाएगा, बल्कि उसे तमिलनाडु के तिरुवल्लूर ज़िले में स्थित श्रीलंकाई शरणार्थी शिविर में वापस रिपोर्ट करने का निर्देश दिया। (अनुच्छेद 36, 74, 91 और 95)